REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 1 | OCTOBER - 2018

व्यक्ति-स्वतंत्रता और दरमियानी फासलों पर चिंतन: विपात्र

डॉ. गोरख थोरात
हिंदी विभाग प्रमुख, सर परशुरामभाऊ महाविद्यालय, पुणे.

इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए
पूरी दुनिया को साफ करने के लिए मेहतर चाहिए
वह मेहतर मैं नहीं हो पाता। [i]

समाज में फैली असामाजिकता, शोषण, भेदाभेद की गंदगी साफ करने की कोशिश करनेवाले गजानन माधव मुक्तिबोध एक ईमानदार और बेचैन साहित्यकार के रूप में सामने आते हैं। उन्हें कबीर की परंपरा का उत्तराधिकारी माना जा सकता है। कबीर ने भी *हम घर जारौ आपना लिया मुराडा हाथ, अब घर जारौ तासु का, जो चलै हमारै साथ* कहकर समाज की भलाई के लिए अपने घर पर जलता हुआ पलीता रखा था। कबीर तो फक्कड़ एवं मस्तमौला थे, परंतु पारिवारिक दायित्वों के बोझ तले दबे हुए मुक्तिबोध के लिए उतना फक्कड़ एवं मस्तमौला बन्ना संभव नहीं था। लेकिन फिर भी वे समाजिक विसंगतियों को देखकर हमेशा बेचैन रहे। कविताएँ हो, कहानियाँ हों, उपन्यास हो या आलोचना - उनका संपूर्ण साहित्य बेचैनी से भरा साहित्य है। हर एक जगह वे एक बेचैन प्रहरी के रूप में समाज को सावधान करने का प्रयास करते हैं। दुर्भाग्य से हमारे आसपास झूठ, फरेब, स्वार्थ, अवसरवादिता, लूट-खसोट, अनाचार आदि का कोहरा इतना ज्यादा गहरा है कि उसके सामने सच्चाई की, ईमानदारी की, मानवता की आवाज धुँधली-सी पड़ जाती है। सच्चाई लोगों की संवेदना पर दस्तक अवश्य देती है, परंतु उसके भीतर पहुँचने में काफी समय लग जाता है। यही कारण है कि मुक्तिबोध के जीवनकाल में उनकी तथा उनके साहित्य की चर्चा बहुत अधिक नहीं हो पायी, परंतु मृत्यु के बाद वे हिंदी साहित्य में सर्वाधिक चर्चित एवं गंभीर चिंतनशील साहित्यकार के रूप में उभरे हैं। माक्र्सवादी चिंतनधारा से ओतप्रोत उनका साहित्य सही मायने में शोषित, पीडित जनता का पक्षधर है, जो समाज के कथित उच्च एवं मध्यवर्ग को आत्मावलोकन करने के लिए, अपने अंदर झाँकने के लिए विवश करता है।

एक मनुष्य के रूप में मुक्तिबोध एक अत्यंत संवेदनशील और अच्छे इन्सान थे। क्लाड ईथरली कहानी में एक लेखक का परिचय देते हुए वे बेचैनी से कहते हैं, "पता नहीं क्यों, मैं बहुत ईमानदारी की जिंदगी जीता हूँ; झूठ नहीं बोला करता, परस्त्री को नहीं देखता; रिश्वत नहीं लेता; भ्रष्टाचारी नहीं हूँ; दगा या फरेब नहीं करता; अलबत्ता कर्ज मुझपर जरूर है जो मैं चुका नहीं पाता। फिर भी कमाई की रकम कर्ज में जाती है। इस पर भी मैं यह सोचता हूँ कि बुनियादी तौर से बेईमान हूँ।"[ii] इस तरह से अपना परिचय देने का साहस एक ईमानदार एवं संवेदनशील साहित्यकार ही कर सकता है। इसी कहानी में वे संवेदनशील लेखकों की श्रेणियों का परिचय

देते हुए कहते हैं, "जो आदमी आत्मा की आवाज कभी-कभी सुन लिया करता है और उसे बयान करके छुट्टी पा लेता है, वह लेखक हो जाता है। जो आत्मा की आवाज लगातार सुनता है और कहता कुछ नहीं, वह भोला-भाला सीधा-सादा बेवकूफ है। जो उसकी आवाज बहुत ज्यादा सुना करता है और वैसा करने लगता है, वह समाज विरोधी तत्वों में यों ही शामिल हो जाया करता है। लेकिन जो आदमी आत्मा की आवाज जरूरत से ज्यादा सुन करके हमेशा बेचैन रहा करता है और उस बेचैनी में भीतर के हुक्म का पालन करता है, वह निहायत पागल है। पुराने जमाने में संत हो सकता था। आजकल उसे पागलखाने में डाल दिया जाता है।"[iii] कहने की जरूरत नहीं कि मुक्तिबोध इसी आखरी श्रेणी के लेखक हैं। क्योंकि वे सही मायने में संवेदनशील थे। उनकी संवेदना दलित, शोषित, पीड़ित समाज की पक्षधर बनकर उनपर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध आक्रोश करती है। विषमता के प्रति इसी आक्रोश ने उन्हें संवेदनशील बनाकर दुनियादारी, मानसम्मान और ख्याति से विरक्त बना दिया था और इसी कारण वे जिंदगीभर अभाव की स्थिति में जीते रहे।

गजानन माधव मुक्तिबोध की कार्ति का मुख्य आधार उनकी कविताएँ हैं। परंतु उनका गद्य साहित्य भी उनकी कविताओं की तरह मानवतावाद एवं सामाजिक प्रतिबद्धता का द्योतक है। उनका साहित्य काल्पनिक, कोरी भावुकता या रोमांस साहित्य नहीं है, अपितु सिद्धांत, अनुभूति एवं संवेदना की तप्त भट्टी में निखरा हुआ गंभीर चिंतनात्मक साहित्य है, जिसकी तह तक पहुँचना हर किसी के बस की बात नहीं। इसी कारण व्यावहारिक दृष्टिकोण से वह बहुत अधिक लोकप्रिय नहीं है, परंतु गंभीर चिंतन के रूप में हमेशा विद्वानों को चुनौती देता रहा है। गद्य साहित्य में उन्होंने कहानियाँ, उपन्यास, डायरी तथा आलोचना का सृजन किया है। ये सारा साहित्य किसी परंपरागत लीक का अनुसरण नहीं करता, अपितु साहित्य विधाओं के परंपरागत ढाँचों को तोड़ता हुआ हमारी चेतना को, संवेदना को झकझोरता है। हमारी विवेच्य रचना, उनका एकमात्र उपन्यास विपात्र भी इसके लिए अपवाद नहीं है। क्योंकि यह उपन्यास भी विद्वानों के सामने अच्छी-खासी चुनौती उपस्थित करता रहा है। इसी कारण किसी ने इस रचना को मुक्ति का उपनिषद[iv] माना है, किसी ने बुद्धिजीवियों के संकट की अभिव्यक्ति[v] माना है, तो कोई इसे एक लेखक की अपने आप से जिरह[vi] मानता है।

दरअसल, विपात्र अपने मूल रूप में एक कहानी की शक्ल में प्रकाशित हुआ था। सन 1967 में काठ का सपना संग्रह में एक कहानी के रूप में प्रकाशित यह रचना सात भागों में और साठ पन्नों में फैली हुई थी, जो मुक्तिबोध की अन्य कहानियों की तुलना में काफी दीर्घ थी। परंतु मुक्तिबोध इसे एक उपन्यास के रूप में ही देख रहे थे। अतः इन सात भागों में दो भाग और जोड़कर मुक्तिबोध ने इसे उपन्यास का रूप प्रदान किया, जो उनकी मृत्यु के पश्चात सन 1970 में प्रकाशित हुआ। कहानी के रूप विपात्र मध्यवर्ग की नपुंसकता अथवा एबीलार्ड दशा के प्रतिपादन पर आकर समाप्त हो जाता है। परंतु उपन्यास के रूप में यह इससे आगे बढ़कर मध्यवर्ग की एबीलार्ड दशा के नैतिक संकट के प्रतिपादन के साथ-साथ उसका समाधान देने का भी प्रयास करता है। और समाधान यह है कि इस वर्ग की मुक्ति अकेले में अकेले की नहीं हो सकती। सघन आत्मीय संबंधों के परिवेश में जीने से ही मध्यवर्ग के साथ साथ मानवता का भी कल्याण संभव है। घटना-प्रसंगों की दृष्टि से विपात्र लघु-उपन्यास या दीर्घकथा की श्रेणी में आता है, परंतु प्रतिपाद्य की दृष्टि से उसका फलक अत्यंत व्यापक है। इतना कि उसमें मानवमात्र की भीतरी और बाहर की दरिद्रता से मुक्ति का विषय समाविष्ट है।

इस उपन्यास में कथावस्तु, घटनाओं का अभाव है। कथावस्तु के नाम पर उपन्यास में लेखक और उसके साथियों का महज आधे दिन का दिनक्रम आया है। उसी में निवेदक, जगत् और भनावत के बीच की

चर्चाओं से लेखक का चिंतन मुखर होता गया है। इस चिंतन में उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के प्रति की जानेवाली घृणा, अपनी चेतना को उच्च वर्ग के पास गिरवी रखने से मध्य वर्ग में उपजी नपुंसकता की स्थिति, व्यक्तिस्वातंत्र्य और दरमियानी फासले आदि बिंदुओं पर विचार-विमर्श हुआ है। उपन्यास में हेमिंग्वे की मृत्यु कार्ल सैंडबर्ग, डिकेन्स, एड्ना विसेंट मिले, डलेस, आइजनहावर आदि लेखकों, नैस्फील्ड ग्रामर, मेयर आॅफ केस्टरब्रिज आदि ग्रंथों तथा कैलिफोर्निया-हार्वर्ड युनिवर्सिटी, सैन्फ्रान्सिस्को, वाल्ट ह्विटमैन आदि स्थानों का उल्लेख हुआ जो लेखक के यूरोपीय साहित्य के प्रति लगाव को प्रस्तुत करता है।

विपात्र में मुख्य रूप से मध्यवर्ग की एबीलार्ड दशा का प्रतिपादन हुआ है। दरअसल, एबीलार्ड एक ईसाई संत था। फ्रान्स के इस दर्शनशास्त्री और धर्मशास्त्री को फुलबर्ट नामक धनिक व्यक्ति ने अपनी भतीजी हेलोई को पढ़ाने के लिए उसे नियुक्त किया था। परंतु पढ़ाते-पढ़ाते हेलोई और एबीलार्ड दोनों में प्यार हो गया, दोनों ने गुप्त रूप से विवाह भी कर लिया और हेलोई ने एक बच्चे को जन्म भी दिया। पर इससे फुलबर्ट बेकाबू हो गया और उसने एबीलार्ड की जननेंद्रिय काट डाली। इसके बाद एबीलार्ड और हेलोई ने संन्यास ले लिया और बाद में एबीलार्ड एक ईसाई संत के रूप में विख्यात हुआ। यद्यपि एबीलार्ड की जननेंद्रिय फुलबर्ट ने काटी थी, फिर भी खबर ऐसी फैला दी कि स्वयं एबीलार्ड ने निष्कलंक संत बने रहने के लिए अपनी जननेंद्रिय चाकू से काट ली है। विपात्र उपन्यास में स्वयं अपनी जननेंद्रिय काटनेवाले एबीलार्ड का उल्लेख हुआ है और व्यक्तिबद्धता के कारण सृजनशक्ति से कुंठित मध्यवर्ग के लोगों को एबीलार्ड कहा गया है। अपने स्वार्थ और सुखसुविधाओं के मोह में यह वर्ग जान-बूझकर संघर्ष के रास्ते से दूर हटकर अपनी सर्जनशीलता को उच्च वर्ग के पास रेहन रख देता है। दरअसल, मध्य वर्ग में यह सामथ्र्य है कि वह इस शोषणयुक्त समाज के उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच पुल बने। क्योंकि ऊँची शिक्षा से संपन्न यह वर्ग अपनी विवेकचेतना के बल पर सामाजिक संतुलन बना सकता है, परंतु अपने इस दायित्व से भटकने और अपनी सृजनशीलता को उच्च वर्ग के पास गिरवी रखने के कारण इनकी स्थिति एबीलार्ड जैसी हो गई है। दरअसल, आजादी के बाद से मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों में अवसरवाद उपजा है, जिसके परिणामस्वरूप वह अपना स्वार्थ सिद्ध करने की होड़ में लगा हुआ है। संभवतः इसी कारण हरिशंकर परसाईजी कहते थे कि इस देश के सभी बुद्धिजीवी शेर हैं पर वे सियारों की बारात में बैंड बजाते हैं। यही कारण है कि इस वर्ग के लोग बड़ी-बड़ी किताबें लिखते हुए भी बंजर हैं। उपन्यास में जगत् इसके प्रतिनिधि के रूप में सामने आता है। जगत् जैसे अध्ययनशील लोग इतने अंतर्मुख या अपने आप में मग्न होते हैं कि वे खुद को बाहरी दुनिया से अजनबी महसूस करने लगते हैं। उनमें सामाजिक क्षेत्र में घुसने की शक्ति नहीं रह जाती। उनकी बिकी हुई आत्माएँ तिजारती जननेंद्रियों के समान दूसरों के भोग का साधन मात्र बनकर सृजन की सार्थकता से वंचित हो जाती हैं। निवेदक जैसे कुछ लोग इस सच्चाई को समझते हैं, परंतु उसपर अमल नहीं कर पाते। क्योंकि ''सिर्फ सच्चाई आदमी को कुछ नहीं दे पाती, सच्चाई को सामने लाने के लिए जोर और ताकत की जरूरत होती है। ऐसी सच्चाई जो आदमी में जोर नहीं पैदा कर पाती, वह सिर्फ जानकारी बनकर रह जाती है।''[vii]

उपन्यास में व्यक्तिस्वातंत्र्य और मनुष्य-मनुष्य के बीच के फासलों की समस्या भी केंद्र में हैं। उपन्यास में यह गंभीर चर्चा निवेदक और जगत् के बीच होती है। दरअसल वर्गभेद और जातिभेद की नींव पर स्थापित शोषणयुक्त समाज में व्यक्तिस्वातंत्र्य लगभग असंभव होता है। इस विषम समाज में व्यक्तिस्वातंत्र्य केवल उन्हीं लोगों का प्राप्य है, जिनके पास धन होता है। शोषित-निर्धनों को तो बस अपनी स्वतंत्रता बेचने की विवशता हो सकती है। उपन्यास में निवेदक कहता है, ''जिस समाज में व्यक्तिगत स्वतंत्रता खरीदी और

बेची जा सकती है, उस समाज में खरीदने और बेचने की स्वतंत्रता है, व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं।''[viii] इसी विवशता के चलते अलग अलग लोग उच्च वर्ग के सामने अलग अलग ढंग से अपनी दुम हिलाने के लिए स्वतंत्र होते हैं। उपन्यास में उच्च वर्ग के प्रतीक विद्याकेंद्र के बास के सामने उसके मातहत लोग अलग-अलग शैली में अपनी दुम हिलाते नजर आते हैं। वैसे जगत्, निवेदक, भनावत जैसे लोगों को उनकी चेतना दुम हिलाने की अनुमती नहीं देती, परंतु दुम हिलाना उनकी विवशता है। उदा. निवेदक की यह पंद्रहवीं नौकरी है। उसे यह अच्छी तरह मालूम है कि नौकरी को दुतकारना आसान है, लेकिन पेट पालना बहुत मुश्किल है। क्योंकि नौकरी छोड़ने का खयाल आते ही उसके सामने पारिवार में डेरा डाले लंबे-लंबे रोग, बालबच्चे और बूढे माता-पिता की जिम्मेदारियाँ आदि का चित्र खड़ा हो जाता है। ये विवशताएँ उसे परिस्थितियों की रौ में बहते चले जाने के लिए बाध्य कर देती हैं। दूसरी ओर शोषक के कुनबे से आया और शोषण से घृणा करनेवाला भनावत भी मौकापरस्त बनने के लिए विवश है। क्योंकि वह अच्छी तरह से जानता है कि इस समाज में अगर आप शोषक बनने से इन्कार करते हैं तो आपको शोषित बनने के लिए विवश होना पड़ता है। इसलिए मध्यवर्ग अपने बास के सामने बिल्कुल उसकी रखैल की तरह पेश आता है। नौकरी के अभाव में ये सभी मध्य वर्ग से निम्न वर्ग में आ जाते हैं और अपनी सीढ़ी से नीचे उतरना किसी को भी गँवारा नहीं है। मध्यवर्ग का यह हाल है तो निम्नवर्ग की विवशता का कोई अंत ही नहीं है। उच्च वर्ग के लोग पूँजी के बल पर उन्हें गुलाम बनाने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र हैं। तात्पर्य, विषमता से ग्रस्त समाज में अपने व्यक्तित्व को अपनी रुचि के अनुकूल समृद्ध बनाने के लिए स्वतंत्रता प्राप्त होना संभव नहीं।

शोषण की नींव पर टिकी इस समाज व्यवस्था में निम्न वर्ग की वेदना और उच्च वर्ग की वासना के कारण व्यक्ति-व्यक्ति के बीच आत्मीय संबंध प्रस्थापित नहीं हो पाते। परिणामतः इन दो वर्गों के व्यक्तियों में दरमियानी फासले उभर आते हैं। ऊँच-नीच की भावना से उत्पन्न इन फासलों को मुक्तिबोध ने अक्षांशवाले फासले कहा है। ये फासले उसी प्रकार के फासले हैं, जिस प्रकार एक ही निसैनी के उपरली और निचली सीढ़ियों पर खड़े व्यक्तियों के बीच होते हैं। इन फासलों के मूल मं घृणा है। आज तक उच्च वर्ग के लोग (उदा. बास) निम्न वर्ग के लोगों से घृणा करते आए हैं। किंतु अब निम्न वर्ग के लोगों में ज्यों-ज्यों आत्मचेतना जाग रही है, त्यों-त्यों उनमें उच्च वर्ग के प्रति असंतोष और घृणा का भाव बढ़ता जा रहा है। वे उच्च वर्ग से अपना संबंध तोड़ने के लिए वे धर्मपरिवर्तन का रास्ता अपना रहे हैं। उनके इस धर्मपरिवर्तन के मूल में आध्यात्मिकता की भूख प्रमुख नहीं है, अपितु उत्पीड़क उच्च वर्ग से मुक्ति पाने की इच्छा है। निवेदक इन फासलों के दुष्परिणामों की तरफ भी संकेत करते हुए डा. बाबासाहेब आंबेडकर के सुर में सुर मिलाते हुए कहते हैं कि, ''ऊँची निसैनी की सर्वोच्च सीढ़ी पर चढ़ा हुआ व्यक्ति जब उसी निसैनी की निचली सीढ़ी पर खड़े हुए व्यक्ति को अपने से नीचा और हीन समझने लगता है, तब निसैनी पर ही हाथापाई होने की नौबत आ जाती है। यदि ऐसी हाथापाई हुई तो दोनों को चोट लगती है। इससे तो यह अच्छा है कि ऊँच-नीच पैदा करनेवाली खतरनाक निसैनी टूट जाए!!''[ix] इस निसैनी को तोड़ने के लिए हमें अपने निज का परिष्कार करना होगा। ''निज का परिष्कार करने के लिए, अहंकार से मिश्रित आत्मवैभव के बाक्साइट को शुद्ध करने के लिए हमारा किसी के भीतर पहुँचना और किसी दूसरे का हमारे भीतर पहुँचना आवश्यक होता है। किसी दूसरे के भीतर पहुँचने के लिए अपने को व्यक्तिबद्धता की कैद से मुक्त करना जरूरी है। व्यक्तिबद्धता की कैद से मुक्त होने पर ही दो व्यक्तियों की टकराहट आत्मपरिष्कार या दृष्टि विकास के लिए उपयोगी सिद्ध होती है।''[x] क्योंकि

"स्व से ऊपर उठना, खुद की घेरेबंदी तोड़कर, कल्पनासज्जित सहानुभूति के द्वारा अन्य के कर्म में प्रवेश करना, मनुष्यता का सबसे बड़ा लक्ष्य है।"[xi]

अक्षांशवाले फासलों के अतिरिक्त एक और प्रकार के फासले होते हैं, जिन्हें मुक्तिबोध ने देशांतरवाले फासले कहते हैं। ये फासले भिन्न वर्गों के व्यक्तियों के बीच नहीं, बल्कि एक ही वर्ग के व्यक्तियों के बीच होते हैं। ये फासले समतल मैदान पर खड़े लोगों के बीच के होते हैं। उपन्यास में देशांतरवाले फासलों का उल्लेख मध्य वर्ग के तत्वावधान में हुआ है। इस वर्ग के लोग व्यक्तिबद्धता को जन्म देनेवाले वासना और वेदना आदि कारणों से मुक्त होने के बावजूद दरमियानी दूरियों से पीड़ित होते हैं। ऊँचा ज्ञान पाने के बावजूद वे ये फासले लाँघने में असमर्थ होते हैं। मुक्तिबोध अत्यंत तड़प के साथ इसका कारण बताते हैं, "हममें सामाजिक चेतना नहीं थी, क्योंकि असल में हम सब हरामखोर थे।" अर्थात् यहाँ उनका व्यक्तिगत स्वार्थ आड़े आ जाता है। खाओ-पियो मौज करो अथवा मारो-खाओ हाथ मत आओ का सिद्धांत यहाँ काम करता है। उपन्यास मे ये फासलें जगत और रावसाहब के आपसी संबंधों के तत्वाधान में सामने आते हैं। यहाँ ये दोनों बास के मातहत है, फिर भी इनमें परस्पर घृणा और ईष्र्या का भाव है। रावसाहब जैसे घाघ लोग तो इस घात में लगे रहते हैं कि किस तरह अपने बास के सामने दूसरी रखैलों से अधिक प्रिय बनकर अधिक ऊँचे ओहदों पर पहुँचा जाए। ऊँचे ओहदों पर पहुँचने की प्रतिस्पर्धा के कारण अपने साथी भी उन्हें प्रतिस्पर्धी जान पड़ते हैं और परिणामतः अपने ही साथियों से उनकी दूरियाँ बढ़ जाती हैं। इस संदर्भ में निवेदक अपने उन मित्रों से तिलमिलाहट के साथ बात करते हैं, जो एक गर्व से दूसरे वर्ग में आकर अपनों से दरमियानी फासले बढ़ाए हुए हैं, "ओ दिल्ली-वासी मित्र, तुम इतने उखड़े-उखड़े क्यों नजर आते हो? तुम्हारे भीतरी चेहरे पर शनिश्चरी छाया क्यों है!! तुम गाँव से आए, शहर में बसे। वहाँ बसकर, खासा कीमती सूट पहनने लगे। गाँव के तुम्हारे जो साथी थे, वे अब गँवार महसूस हुए। तुम जितना ऊपर चढ़ते हो, अपने सगों से दूर क्यों हटते जाते हो? हर अगली सीढ़ी की उँचाई पर खड़े होकर तुम निचली सीढ़ी को हीन क्यों समझने लगते हो?"[xii]

मुक्तिबोध दरअसल आत्मसंघर्ष और आत्मालोचन के साहित्यकार हैं। उपन्यास में वे जिन स्थितियों पर, जिस मध्यवर्ग पर प्रहार करते हैं, उसका हिस्सा वे स्वयं भी हैं। इसलिए निवेदक को पूरी ताकत के साथ काम न करनेवाली अपनी सृजनशीलता पर छटपटाहट महसूस होती है और अपनी ही जिंदगी निरर्थक मालूम होने लगती है। वे सोचते हैं, "दिमाग चलता है, दिल में हलचल होती रहती है, लेकिन उसके मुताबिक हलचल नहीं कर पाता! वे जो गतियाँ अंदर-अंदर होती हैं, बाहर प्रतिफलित नहीं हो पातीं। धरड़-खरड़ खरड़-धरड़ मशीन चलती है, चलती रहती है। उसमें स्याही लगी है लेकिन कागज नहीं है; इसलिए कुछ नहीं छपता। पुस्तक नहीं, पर्चा नहीं, अखबार नहीं। पर पूरी मशीन रफ्तार के साथ चलती रहती है सूने, अंधेरे-अकेले में। ओ फोरमैन...यदि चाय पीने नहीं गए हो तो स्वीच आफ करो जिससे कि मशीन बंद हो जाए...बिजली का इंधन बरबाद हो रहा है। जिंदगी की बिजली फिजूल खर्च हो रही है। एक अजीब भयानक काला-काला साँड पल-क्षण की हरी हरी घास चरता जा रहा है।"[xiii] यहाँ लेखक अपनी निष्क्रियता पर झुँझलाए हुए नजर आता है।

संक्षेप में, विपात्र उपन्यास परंपरागत परिपाटी का उपन्यास नहीं है, जिसका कथावस्तु, चरित्र, परिवेश, संवाद, भाषा और उद्देश्य आदि तत्वों के आधार पर मूल्यांकन किया जा सके। बल्कि यह उपन्यास इस विधा के स्थापित ढाँचे को तोड़ता हुआ उसे चिंतशील रूप प्रदान करता है। एक आत्मसंघर्ष और आत्मालोचन के साहित्यकार के नाते मुक्तिबोध की इसमें एक लेखक के रूप में जिरह पाठक के दिलोदिमाग पर छा जाती है।

संदर्भ

[i]. चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ. 108
[ii]. काठ का सपना, विपात्र, पृ. 15
[iii]. काठ का सपना, विपात्र, पृ. 17
[iv]. विपात्रः एक सृजनात्मक उपलब्धि, डा. चंद्रभानु सोनवणे, पृ. 10
[v]. गजानन माधव मुक्तिबोध, संपा. लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ. 186
[vi]. विपात्रः एक सृजनात्मक उपलब्धि, डा. चंद्रभानु सोनवणे, पृ. 9
[vii]. विपात्र, पृ. 9
[viii]. विपात्र, पृ. 72
[ix]. विपात्र, पृ. 58
[x]. विपात्र, पृ. 72
[xi]. नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ. 91
[xii]. विपात्र, पृ. 55
[xiii].विपात्र, पृ. 54